इतिहासों के अँधेरे-उजले गलियारे, सुरंगें और तहखाने और उनसे गुज़रते बच्चे!

प्रकाश कान्त

पारम्परिक इतिहास शिक्षण और इतिहास की पुस्तकों से आम तौर पर यह शिकायत हुआ करती है, और वह शिकायत अपनी जगह काफी हद तक सही भी होती है, कि यह इतिहास ज़्यादातर सिर्फ राजाओं-नवाबों के नाम, उनकी वंशावलियों और दीगर कारनामों का लेखा-जोखा होता है। राजा-नवाब, युद्ध, हार-जीत, राज्य, साम्राज्य, साम्राज्य-विस्तार, राज्य व्यवस्था जैसी बातों और ब्यौरों से भरे इतिहास सामान्यतः उबाऊ होते हैं और इस पर तिथियों की भरमार! हर तिथि महत्वपूर्ण! हर तिथि ऐतिहासिक!! यह सब मिलकर बच्चों में एक खास तरह की ऊब और आतंक पैदा करते हैं।

इतिहास लेखन की विडम्बना

इतिहास शुरू से ही राजसत्ता केन्द्रित रहा। जन की सत्ता, जन की भूमिका उससे बेदखल रही। राजा, उसका खानदान, वंश, यश, जय-पराजय और कामकाज। यही इतिहास था। कभी जानने-समझने की कोशिश नहीं की गई कि उस समय के लोग क्या कर रहे थे! राजा की तो हर बात का बखान था लेकिन उस प्रजा का कहीं ज़िक्र नहीं था जिसका वह राजा था। हर समय-काल के राजा के बारे में तो खूब बताया जाता था कि वह कौन था, कैसा था, क्या करता था लेकिन उस समय के लोग कैसे थे, क्या करते थे वगैरह बातों का या तो ज़िक्र होता ही नहीं था या फिर बहुत कामचलाऊ किस्म का होता था। केवल विभिन्न सभ्यताओं का इतिहास ऐसा रहा जिसमें लोगों का ज़िक्र हुआ। यह भी शायद इसलिए क्योंकि राजा वहाँ या तो थे नहीं या बहुत कम थे।

इतिहास लेखन के इस जनविरोधी रवैये से बौद्धिक वर्ग को काफी शिकायत रही। मुझे खुद लगता रहता था कि इतिहास इस तरह से क्यों नहीं लिखा जाना चाहिए कि अलग-अलग समय में लोग किस तरह रहते थे? उनका सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन कैसा था? उनके सोच और व्यवहार में किस

तरह से परिवर्तन आते थे? मतलब कि इतिहास का फोकस समय-विशेष के लोगों पर क्यों नहीं होना चाहिए, बजाय राजसत्ता के? भले ही यह सत्ता हर दौर के समाज और व्यक्ति को लगभग पूरी दुनिया में नियंत्रित, निर्देशित और नियमित करने वाली रही हो! और ऐसा सोचना राजतंत्र बनाम जनतंत्र के सरलीकरण का मसला नहीं था। बल्कि इतिहास के रूढ़ और जड़ हो चुके पैटर्न से असहमत होने के कारण था। शायद उतना गलत भी नहीं था।

इसके अलावा, एक और चीज़ से असहमति महसूस होती थी। वह था, भारतीय इतिहास को हमेशा उत्तर की तरफ से देखा जाना। भले ही शुरुआत में और काफी लम्बे समय तक राजनैतिक घटनाओं का केन्द्र मुख्यतः उत्तर भारत रहा लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि दक्षिण या उत्तर-पूर्व में कुछ हो ही नहीं रहा था, जो कुछ भी होता रहा था, वह सिर्फ उत्तर में ही! आखिर भारत का इतिहास उत्तर-पूर्व या दक्षिण की तरफ से शुरू करके क्यों नहीं पढ़ा-पढ़ाया जाना चाहिए? यह बात सामाजिक अध्ययन प्रशिक्षण कार्यशालाओं में उठी भी थी। अनौपचारिक तौर पर थोड़ी-बहुत चर्चा भी हुई थी। लेकिन फिर प्रशिक्षण के तयशुदा कार्यक्रम के बीच कहीं छूट गई।

एक और बात थी। दक्षिण या उत्तर-पूर्व भारत को भारतीय इतिहास में बहुत कम जगह दी जाना। भूगोल में तो फिर भी उत्तर-पूर्व को जगह मिल जाती है लेकिन इतिहास में तो बिलकुल भी नहीं मिलती। आठवीं तक का इतिहास पढ़ चुका छात्र उत्तर-पूर्व के इतिहास के बारे में पूरी तरह से अनजान होता है और दक्षिण के इतिहास के बारे में भी वह बहुत थोड़ा-सा ही जानता है जबकि उत्तर भारत के इतिहास की छोटी-से-छोटी जानकारी उसे विस्तार से दी गई होती है।

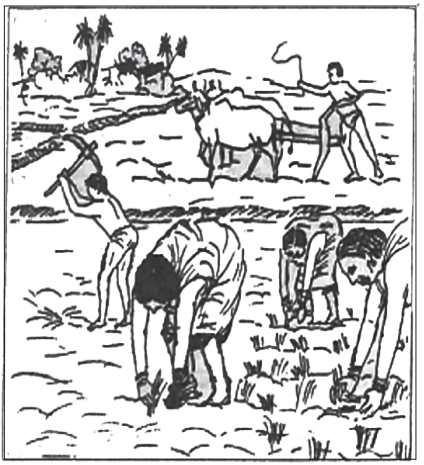
एक था राजा, एक थी रानी...

जहाँ तक बच्चों की बात है, आज के बच्चे भले ही न सही लेकिन इनके पहले के तमाम बच्चे बिलकुल छुटपन से राजा-रानी वाली कहानियाँ सुना करते थे जो ज़्यादातर फैंटसी की शक्ल में हुआ करती थीं। इसके बावजूद, उनसे बच्चों के भीतर बीते वक्त या कहें कि एक तरह के 'इतिहास' को लेकर हल्का-सा जिज्ञासा भाव पैदा होता था। मोटे तौर पर इन्हें दादी-नानी की कहानियाँ कहा जाता था क्योंकि ज़्यादातर दादियाँ-नानियाँ ही इन्हें सुनाती थीं। रात को सोने से पहले! बच्चे बहुत बार इन्हें सुनते-सुनते ही सो जाते थे। कहानियों को आधा-अधूरा छोड़कर! अब वे दादियाँ-नानियाँ नहीं रहीं। ज़ाहिर है, बीते वक्तों की गन्ध से भरी उनकी कहानियाँ भी नहीं रहीं।

'एक था राजा, एक थी रानी...' ये सभी कहानियाँ सामान्यतः इसी तरह शुरू होती थीं। एक मंत्री होता था और राजकुमार या राजकुमारी होते थे। राजा दुष्ट या अच्छा होता था। मंत्री उससे उलट! और कहानी चलती रहती थी। आगे कई लोग या अलग-अलग चीज़ें आती-जाती थीं। जादूगर, राक्षस, साधु-महात्मा, उड़ने वाला घोड़ा वगैरह। बरसों पहले रेडियो पर के.एल. सहगल का गाया एक गीत बजा करता था – 'एक राजे का बेटा लेकर उड़ने वाला घोड़ा...'। सो, राजा, राजकुमार, उड़ने वाला घोड़ा जैसी चीज़ें गीतों से लेकर कहानियों तक में होती थीं। एक विराट फैंटसी! इन कहानियों में एक काल्पनिक बीता हुआ समय होता था। बच्चे उससे खुद को जुड़ा महसूस कर पाते थे। कभी-कभी ये कहानियाँ विक्रम-बेताल, सिंहासन बत्तीसी इत्यादि से होती हुई पौराणिक आख्यानों तक चली आती थीं। इन सबके ज़रिए बच्चे में एक खास तरह का अतीत बोध विकसित होता है। भले ही इस अतीत का बहुत बड़ा हिस्सा काल्पनिक, मनगढ़न्त और अतिरंजित होता हो! जो भी हो, इसी अतीत बोध से रास्ता निकलता है, इतिहास बोध का!

इतिहास के धुँधलके में छिपे सच!

बहरहाल, इस नवाचारी सामाजिक अध्ययन के इतिहास खण्ड में एक





तलैच्छंगाडु में जो परिवर्तन हुये, वे इन दो चित्रों में दिखाये गये हैं। इन दो चित्रों में क्या परिवर्तन तुम्हें नज़र आते हैं?

चित्र-1: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'दक्षिण भारत के गाँव - तलैच्छंगाडु गाँव, सन् - 950-1250' का एक चित्र।*



चित्र-2: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'कैसे पता करें - क्या हुआ, क्या नहीं हुआ' से सुल्तान मोहम्मद तुगलक के राजधानी स्थानान्तरण को दर्शाता चित्र।*

चीज़ तो खास तौर पर हुई – उसे तारीखों और राजा-नवाबों के बोझ से काफी हल्का किया गया। कोशिश की गई कि बच्चे अपने देश-समाज के गुज़रे हुए समय को जानें-समझें। उसके अधिक-से-अधिक समूचेपन में। इसीलिए, इनका जितना और जैसा भी ज़िक्र था, वह बीते हुए समय को ठीक से जानने-समझने के लिए बतौर माध्यम ही था। उनके ज़रिए बहुत सारी चीज़ें खुलती थीं। खास बात तो यह कि पाठों के भीतर चित्र, नक्शे वगैरह से सम्बन्धित जो विभिन्न गतिविधियाँ दी गई थीं, वे बच्चों को सक्रिय तो रखती ही थीं, इसके अलावा इतिहास को लेकर एक ज़रूरी किस्म की वस्तुनिष्ठ समझ भी विकसित करती थीं। हालाँकि, इतिहास में वस्तुनिष्ठता को लेकर अलग तरह की बहस रही है। और उसका बहुत दूर तक निर्वाह थोड़ा-सा मुश्किल भी देखा गया है। किस्म-किस्म के आग्रह-दुराग्रह तो अपनी जगह हैं ही, अलग-अलग दृष्टिकोण भी इतिहास लेखन को प्रभावित करते रहे हैं। इसी के चलते इतिहास की घटनाओं की अलग-अलग व्याख्याएँ सुनने-पढ़ने को मिला करती हैं। बीच-बीच में इतिहास के पुनर्लेखन की माँग भी उठती रहती है। कई बार किसी घटना-विशेष का कोई अन्तिम रूप या सत्य निर्धारित कर पाना कठिन हो जाता है।

इस समस्या या संकट को समझने के लिए सातवीं के इतिहास खण्ड में सुल्तान मोहम्मद तुगलक द्वारा अपनी

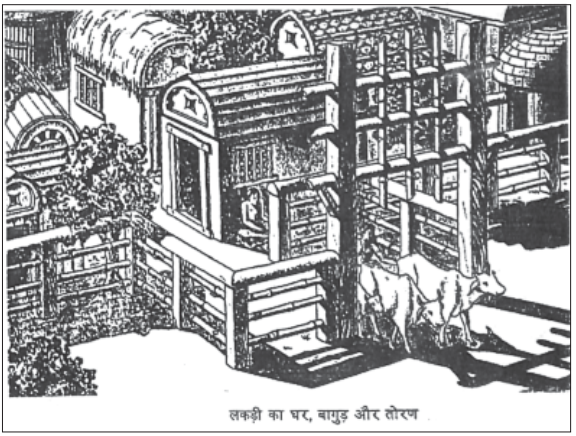
राजधानी दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित करने की घटना को उस समय के दो इतिहासकारों के नज़रिए से देखने की कोशिश की गई। ज़िया बरनी (तारीख ए फिरुज़शाही) और एसामी (फुतुह उस सालतिन) ने सन् 1328 की इस घटना का एक-दूसरे से बिलकुल उलट वर्णन किया है। एसामी ने जहाँ इस योजना का एक कुत्सित और अव्यावहारिक योजना की तरह वर्णन किया है, वहीं बरनी ने सहानुभूतिपूर्ण वर्णन करते हुए उसे एक अच्छी एवं फायदेमन्द योजना बताया है। दोनों के पास ऐसा करने के अपने-अपने कारण थे। निश्चय ही, इतिहास के अध्ययन के लिहाज़ से यह एक बहुत महत्वपूर्ण पाठ है। रोचक तो है ही! बच्चों को राजधानी परिवर्तन की घटना का दो अलग-अलग तरह का वर्णन पढ़कर मज़ा भी काफी आया और वे यह जान सके कि लिखित या किसी और तरह का प्रमाण होते हुए भी अतीत की किसी घटना के वास्तविक सत्य का पता लगा पाना कितना कठिन और उलझा हुआ काम हो सकता है! खासकर, जब प्रमाण अन्तर्विरोधी हों। इतिहास जानने के साधनों पर प्रचलित पुस्तकों में भी जानकारियाँ दी गई थीं। लेकिन इस पर चर्चा नहीं की गई थी कि इन साधनों के ज़रिए भी सही तथ्यों का पता लगा पाना और अन्तिम रूप से कुछ कह पाना कितना मुश्किल हो सकता है। साथ ही, उन साधनों की अपनी सीमाएँ और समस्याएँ भी हो सकती हैं। और कई बार ज्ञान के क्षेत्र में 'अन्तिम सत्य' का प्रश्न सन्देहास्पद ही बना रहता है। हमेशा नई खोज पुराने स्थापित सत्य को अपदस्थ कर देती है। हालाँकि, वह सत्य अप्रासंगिक नहीं हो जाता। किसी-न-किसी अर्थ में उसकी अपनी उपयोगिता बनी रहती है। यह पाठ इस चीज़ को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट करता था। इतिहास की पढ़ाई शुरू करने के पहले इस तरह के पाठ से गुज़रना बच्चों में ज़रूरी सावधानी विकसित करने में सहायक हो सकता है।

पुरानी चीज़ों, किताबों और इमारतों से आती इतिहास की आवाज़ें!

इस पाठ को पढ़ाने के दौरान मैंने सामान्यतः यह बात कही कि हमारे घरों में या आसपास ऐसी बहुत पुरानी चीज़ें हो सकती हैं जिसके ज़रिए हमें पुराने समय के बारे में बहुत सारी न सही, लेकिन कुछ-न-कुछ तो जानकारी हासिल हो सकती है। पुराने बरतन, पुराना सामान, पुरानी किताबें! यह इतिहास जानने के साधनों के सिलसिले में कहा था। बच्चों ने सुना, इस बारे में छोटी-मोटी ही बात हुई और पीरियड खत्म हो गया। ठीक अगले दिन तो नहीं लेकिन उसके आगे वाले दिन एक बच्चा मेरे पास एक किताब लेकर आया।

"सर, म्हारा घरे पुरानी पेटी में या किताब थी!" उसने किताब देते हुए कहा। मैंने किताब ली। किताब के पीछे के कुछ पेज फटे हुए थे। पीले पड़ चुके पन्ने। बड़े अक्षरों में छपाई। पतली-सी किताब! मैंने एक बार उसे उलटा-पलटा। वह किताब जिससे पुराने कागज़ों की गन्ध आ रही थी, कुछ-कुछ परिचित-सी लगी। कवर पेज तो फट गया था लेकिन उसके बाद वाला मतलब पुस्तक परिचय वाला पन्ना सुरक्षित था। उस पर नज़र डाली। वह प्राथमिक कक्षा की हिन्दी की किताब थी। सन् डला था – 1956, भीतर कुछ चमका। एक बार फिर टटोला। किताब उस समय की थी जब खुद मैं पश्चिम निमाड़ ज़िले के छोटे-से गाँव ऊन के स्कूल की कक्षा दूसरी-तीसरी में पढ़ता था। किताब को उलटते-पलटते ही कुछ पाठ तुरन्त याद आ गए। 'नाना ने नानी को खींचा। नानी ने मुनिया को खींचा। मुनिया ने मूली को खींचा। मूली ज़मीन से बाहर आ गई...'। ठीक-ठीक यही तो नहीं लेकिन ऐसा ही कुछ! चित्र भी याद आ गया। अपनी बाड़ी की मूली उखाड़ती मुनिया। मुनिया को खींचती हुई उसकी नानी। उसे खींचते नाना...! देखा, तो चित्र वगैरह सब अपनी जगह वैसे ही थे। अन्य पाठ भी। सब कुछ एकदम से याद आ गया। उस समय पढ़ने के बाद वह किताब मैं अब फिर से देख पा रहा था। कई दशकों बाद! इस बीच फिर कभी वह मुझे देखने को नहीं मिली थी। बीच-बीच में याद ज़रूर आती रही थी। अब वही मेरे हाथ में थी। और मैं अपने ऊन के स्कूल की कोने वाली कक्षा में था। कुकड़े सर पढ़ा रहे थे। खिड़की के बाहर हल्की-हल्की बारिश हो रही थी। और मुनिया अपनी बाड़ी से मूली उखाड़ने की कोशिश कर रही थी।

अचानक मुझे कुछ सूझा। लगा कि अगर यह बच्चा इतिहास जानने के साधनों के तहत अपने घर से इतनी पुरानी किताब ढूँढकर लाया है तो इसका उपयोग इसी रूप में किया जा सकता है। और फिर मैंने बच्चों को उस किताब के माध्यम से बताया कि यह किताब किस तरह से हमें बताती है कि 45-50 साल पहले लोग अपनी दूसरी-तीसरी की किताबों में क्या पढ़ते थे। चित्रों से पता चल सकता है कि वे कपड़े हमारे जैसे ही पहनते थे या किसी और तरह के। लेन-देन के लिए जो पैसे इस्तेमाल होते थे, वे अभी जैसे थे या अलग तरह के वगैरह। इसी तरह की अन्य तमाम बातें। फिर बच्चों ने भी बारी-बारी से उलटा-पलटा। उन्हें बात कुछ-कुछ समझ में आई। क्लास में चर्चा शुरू हुई। "पेला का लोग..." (पहले के लोग...) और "पेला को जमानो..." (पहले का ज़माना...), उनकी बातचीत में ये जुमले लगातार सुनाई दे रहे थे। और वे अपने घरों में बड़ों से सुनी


लकड़ी का घर, बागुड और तोरण

चित्र-3: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'पुरानी इमारतें' का एक चित्र। सिन्धु घाटी के शहरों के नष्ट होने के बाद बहुत लम्बे समय तक ईंट की इमारतें नहीं बनीं। लोग लकड़ी व मिट्टी से ही घर व इमारतें बनाते थे। लकड़ी के होने के कारण ये घर व इमारतें सड़कर खत्म हो गईं। इनके बहुत कम निशान मिलते हैं, फिर भी जो निशान मिलते हैं, उनसे जान पड़ता है कि जनपदों के समय में लकड़ी से बने घर, बागुड़ और तोरण द्वार का दृश्य शायद ऐसा दिखता था।*

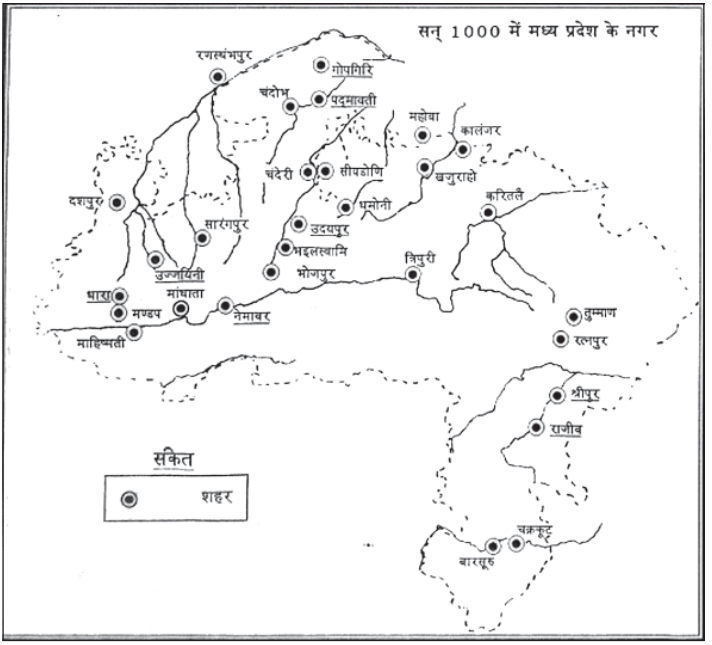
बातें, अपने शब्दों में आपस में सुना रहे थे।

इतिहास जानने के साधन

सामाजिक अध्ययन की प्रचलित पुस्तकों में इतिहास जानने के साधनों की चर्चा परिचयात्मक रूप में पाठ्यपुस्तकों के शुरू के पाठों में ही कर दी जाती है। एक ही जगह! लेकिन, इन पुस्तकों में ऐसा न करते हुए, अलग पाठों के माध्यम से इन साधनों की जानकारी दी गई थी। अगर छठी कक्षा का 'शिकारी मानव' पाठ शैल चित्रों, पत्थर के हथियार और औज़ारों की चर्चा करता था तो 'सबसे पुराने शहर – सिन्धु घाटी के शहर' में खुदाई में मिले खिलौने, मकानों के अवशेष, बरतन, मूर्ति इत्यादि की जानकारी दी गई थी। जबकि 'राजा अशोक' पाठ में शिलालेखों की! पुराने शहर सियडोणि की सारी जानकारी वहाँ की खुदाई में मिले एक लम्बे शिलालेख में दर्ज थी। पुराने सिक्कों की बात कई पाठों में



चित्र-4: *साँची स्तूप का चित्र। इसके निर्माण के वक्त तक इमारतों में पत्थरों का इस्तेमाल होने लगा था।*



चित्र-5: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'एक पुराना शहर - सीयडोणि' का एक चित्र। सन् 900 के लगभग अपने देश के कोने-कोने में शहर बस रह थे। इनमें से कई सीयडोणि की तरह नष्ट हो गए - मगर बहुत सारे आज भी आबाद हैं। एकीकृत मध्यप्रदेश में भी ऐसे बहुत सारे शहर थे जिनमें से कई सारे शहर सीयडोणि की तरह नष्ट हो गए हैं। आज वहाँ केवल उनके खण्डहर बचे हैं - टूटे मन्दिर, ईंट और पत्थर के ढेर, एवं दूर-दूर तक बिखरी हुई खण्डित मूर्तियाँ।*

की गई थी। सातवीं के पाठ 'पुरानी इमारतें' में बहुत पुराने भवनों के माध्यम से किसी समय-विशेष के बारे में पता करने की पद्धति बताई गई थी। गाँव मानकुण्ड में बहुत पुरानी कोई इमारत तो थी नहीं, गाँव के बाहर स्कूल के पास एक शिव मन्दिर ज़रूर था जिसके आसपास मूर्तियों के अवशेष रखे थे। कुछेक बार मैंने अपनी कक्षा वहीं लगाई थी। चार स्कूलों के बाल मेले का प्रश्नमंच वहीं आयोजित हुआ था। बच्चों से कक्षा में मूर्तियों के अवशेषों पर चर्चा हुई थी। बच्चों से अपने घरों से उन मूर्तियों के पुरानेपन को लेकर जानकारी निकलवाकर लाने की कोशिश भी की थी। लेकिन बात ज़्यादा कुछ बनी नहीं थी।

इन पाठों को पढ़ाते समय यह ज़रूर लगा था कि बच्चे उस तरीके या विधि के बारे में पूछ सकते हैं जिससे खुदाई आदि में मिली चीज़ों की उम्र पता की जाती है। मैं भी तय नहीं कर पाया कि मुझे अपनी ओर से

बताना चाहिए या नहीं! शिक्षक साथियों के बीच ज़रूर एक दिन बीच की छुट्टी में इस बारे में थोड़ी-बहुत बात हुई थी। सूर्याजी ने पेड़ों की उम्र पता करने की विधि समझायी थी। खैर।



चित्र-6: *सीयडोणि मण्डी। कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'एक पुराना शहर - सीयडोणि' का एक चित्र।*

एक शिलालेख में सन् 906 की एक घटना के बारे में लिखा है, 'सीयडोणि में रहने वाले महाप्रतिहार महासामन्ताधिपति श्री उन्दभट ने सारे अधिकारियों को सूचित किया - नारायण भट्टारक के मन्दिर में पूजा-पाठ के लिए यह व्यवस्था की जा रही है कि सीयडोणि के मण्डपिक (यानी मण्डी) में से रोज़ मन्दिर को कुछ सोने के सिक्के दिए जाएँगे। जब तक चांद और सूरज रहेंगे तब तक यह व्यवस्था जारी रहेगी। अगर कोई इसका विरोध करे (बाधा डाले) तो उसे पाँच महापाप लग जाएँगे। यह उन्दभट के हस्ताक्षर हैं।'

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: *एकलव्य* द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम, कक्षा-7 से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।